International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 11 No. 3 Jan-Feb 2024

वीर सावरकर के चिंतन में सांस्कृतिक पुनरूत्थानवाद

डॉ. शिवचन्द्र झा
(शोधार्थी), राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकामांझी, भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर बिहार
Corresponding Author – डॉ. शिवचन्द्र झा
Email:- shivchandrajha0@gmail.com

सारांश:-

पाश्चात्य प्रभाव के कारण 19 वीं सदी के आरंभ में भारत में सामाजिक तथा धार्मिक सुधार प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। यह मुख्य रूप से भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और पाश्चात्य उदावादी विचारों के प्रसार का परिणाम थी। इसी के कारण भारत में सामाजिक और धार्मिक नवनिर्माण के कार्यक्रम को अपनाया गया। सामाजिक क्षेत्र में जाति सुधार या जाति प्रथा की समपत्ति, स्त्री के लिए समानाधिकार, बाल विवाह का उन्मूलन, विधवा विवाह का समर्थन, सामाजिक और कानूनी असमानता का विरोध आदि सामाजिक कुरीतियों के प्रश्न पर आंदोलन हुए। धार्मिक क्षेत्र में जो आंदोलन हुए उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास और मूर्तिपूजा, बहुदेवतावाद, वंशानुगत पुरोहिती आदि का विरोध किया। ये सामाजिक एकता सुधार आंदोलन मुख्य रूप से व्यैक्तिव स्वतंत्रता, सामाजिक और सिद्धांतों से जुडे हुए थे।

शब्द कुंजी:- सामाजिक; धार्मिक; हिंन्दु; जाति; सावरकर

भूमिका:-

प्रत्येक युग में लगभग सभी दार्शनिकों, सामाजिक व धार्मिक सुधारकों ने जातिवाद व छुआछूत की आलोचना की परन्तु रूढिवादी हिन्दुओं ने वर्ण-व्यवस्था को शास्त्रों के आधार पर उचित ठहराया। सावरकर ने अनुभव किया कि रूढ़िवादी हिन्दुओं का दृष्टिकोण पुरातनवादी व अनुदारवादी है। यह रूढ़िवादी विचारधारा, असामयिक परम्पराओं तथा पुरानी घिसी-पीटी प्रथाओं से बँध-सी गयी है। वे अपने पक्ष में धार्मिक ग्रन्थों का सहारा लेते हैं। सावरकर जानते थे कि सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं से राजनीति प्रभावित होती है।

किसी भी जाति को अन्य किसी जाति से श्रेष्ठ या कनिष्ठ केवल इसलिए नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह हमारे धार्मिक ग्रन्थों में है। सावरकर के अनुसार विशेष गुणों के अभाव में ब्राह्मण कुल के जन्म लेने के कारण ही व्यक्ति पूज्य तथा विशेष अधिकार व सुविधाओं का हकदार है, ऐसी प्रथा बन्द होनी चाहिए। "केवल इसीलिए किसी व्यक्ति को सिंहासन एवं वेदोक्त राज्यभिषेक का अधिकारी समझना कि उसने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है जबकि उसमें आवश्यक गुण एक भी नहीं है, परन्तु छत्रपति शिवाजी के समान पराक्रमी पुरूष स्वतंत्र राज्य की भी स्थापना क्यों न कर दे। 'फिर भी केवल वह क्षत्रिय नही इसी कारण से वह सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता। ' ऐसा कहना विशुद्ध मुर्खता की नहीं वरन् घातक भी है।[1] यदि जाति-भेदों के जन्मजात कल्पित ऊँच-नीच की भावना तथा विशेष गुणों के अस्तित्व के बिना भी प्राप्त होने वाले विशिष्ट अधिकारों को कम कर दिया जाये, तो वत्र्तमान जाति-भेद के जो अन्य लक्षण भविष्य में दीर्घकाल तक अस्तित्व में भी रहें तो भी समाज को उससे हानि नहीं होगी।

जन्मजात जाति भेद के चार पैर:

सावरकर ने हिन्दु राष्ट्र के संगठन में बाधक बनने वाली जाति-भेद के नाम पर दुष्ट रूढ़ियों को सदैव के लिए समाप्त करने का आवाहन किया। हिन्दु राष्ट्र के प्रबल संगठन के लिए अत्यन्त हानिकारक होने वाला, जाति-भेद का प्रमुख भाग है चार रूढ़ियाँ: (1) व्यवसाय बन्धन, (2) स्पर्श-बन्धन, (3) रोटी-बन्धन, तथा (4) बेटी-बन्धन। "जाति-भेद तो मानो एक चतुष्पाद पशु है, जिन चार पैरों पर वह प्रमुख रूप से खड़ा है, वे उसके चारो पैर यदि तोड़ दिये जाये ंतो समझ लो कि उसकी वह भारी-भरकम देह तत्क्षण ही गिर पड़ेगी।

(1) व्यवसाय बन्धन:-

सवरकर जातिनिष्ठ व्यवसाय-बन्धन के स्थान पर गुणनिष्ठ व्यवसाय-स्वतंत्रता के पक्षधर थे। सावरकर ने स्पष्ट किया कि जातिनिष्ठ व्यवसाय-बन्धन की पोथीनिष्ठ परम्परा का खण्डन कर गुण-निष्ठ व्यवसाय स्वतंत्रता की परम्परा का मुक्त रूप से प्रचलन समाज के लिए लाभकार एवं समृद्ध होगा, यह अब प्रयोग सिद्ध हो चुका है।[2]

(2) स्पर्श बन्धन:-

जन्मजात जाति-भेद का दूसरा पैर स्पर्श-बन्धन है।

सावरकर ने छुआछूत को हिन्दू समाज की रूग्ण मानसिकता का प्रतीक बताया। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू समाज का एक बहुत बड़ा भाग शोषण, अन्याय तथा अत्याचार का शिकार है। यदि प्रत्येक हिन्दू को राष्ट्रीय गतिविधियों में उत्तरदायित्वपूर्ण सहभागी बनाना है तो छुआछूत को समाप्त करना होगा। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के कानपुर अधिवेशन, 1942 मे अपने अध्यक्षीय भाषण में सावरकर ने पाँच वर्ष के अन्दर इस देश के छुआछूत रूपी कलंक को मिटाने का आवाहन किया। उन्होंने कहाः "याद रखो। हिन्दू समाज को संगठित करने के लिए छुआछूत की भावना को मिटाना आवश्यक है।" प्रत्येक हिन्दू संगठनवादी निम्न शब्द कहे और उस पर अमल करेंः "मैं अपने किसी सहधर्मी को इसलिए अछूत नहीं मानूँगा क्योंकि वह विशेष जाति में पैदा हुआ है।

सावरकर ने अस्पृश्यता निवारण हेतु अछूतो को सहर्ष स्पर्श करने पर अधिक बल दिया। उन्होंने कहा हैः "अस्पृश्योद्धार उन्हें शिक्षा, नौकरी, निवास, सुविधा आदि। सहायता देना - जाति-भेदोच्छेद का विषय नहीं है। जाति-भेदोच्छेदन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल जन्मजात अस्पृश्यता को तोड़ना भर है। न छूने के माने अस्पृश्यता, अर्थात छूना माने अस्पृश्यता नष्ट करना। रोटी-बन्धन, बेटी-बन्धन, वोदोक्त-बन्धन आदि जन्मजात जाति-भेद के अन्य सुधार आगे की सीढ़ियाँ हैं और वे तो स्पृश्यों पर भी लागू होती है? अस्पृश्यों का गुट 'स्पृश्य' कर दिया कि स्पर्श-बन्धन टूट गया।

अपने अछूतोद्धार कार्यक्रम में सवारकर ने डा॔. वी. आर. अम्बेडकर की न केवल प्रशंसा की वरन् उनको यथाशक्ति सहयोग भी दिया। अछूतों का उपनयन संस्कार कराने में, उनके मन्दिर प्रवेश के सम्बन्ध में, उनके साथ सहभोज में उनके वेद पढ़ने के अधिकार के सम्बन्ध में, सावरकर ने निरन्तर डा॔. अम्बेडकर का साथ दिया। उनके इस कार्य से प्रभावित होकर पूना में अछूतों के नेता पी. एन. राजभोज ने सार्वजनिक रूप से कहाः "आरम्भ में तो मैं सावरकर जी के आन्दोलन को एक दृष्टा के रूप में देख रहा था। किन्तु जब मैंने उनसे चर्चा की ओर स्वयं अपनी आँखों से उनके कार्य को देखा तो मैं उससे अभिभूत हो गया। मैं अनुभव करता हूँ कि वे राजनीति के क्षेत्र में हीं नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र में भी उसी प्रकार की क्रान्ति लाने के लिए कृत्य संकल्प हैं। रत्नागिरि के विठोबा मन्दिर मं॓ अछूतों के प्रवेश हेतु जो कार्य सावरकर ने किया, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी।[3]

(3) रोटी-बन्धनः-

सावरकर ने रोटी बन्धन को चारों बन्धनों में प्रमुख माना है। उन्होंने कहा हैः "वत्तमान जाति-भेद के इन चार पैरों में से प्रमुख रूप से जिस पैर पर प्रहार करते हीं जाति-भेद की यह भारी-भरकम देह नीचे गिरने वाली है वह पैर है रोटी बन्धन। रोटी बन्धन के टूटते ही जन्मजात जाति-भेद के बचे हुए थोड़े-बहुत अवशेष स्वतः समाप्त हो जायेंगे। रोटी बन्धन के टूटने से बसोड़ां॓ के साथ ब्राह्मण भी यदि भोजन करें तो स्पर्श करने या न करने का प्रश्न हीं नहीं उठाता। रोटी बन्धन तोड़ने का एकमात्र सरल साधन है सहभोज।

सावरकर के शब्दों में "एक होकर लड़ने से जाति-भेद कभी भी समाप्त नहीं होगा परन्तु एक होकर भोजन करते हीं व जहाँ का तहाँ मर जायेगा।" सहभोज या सहपान करने से व्यक्ति अधर्मी नहीं हो जाता। "सहपान या सहभोज या वैधक शास्त्रीय प्रश्न है, उन धर्मशास्त्रों का नहीं है जो कहते है समूची जाति की जाति या धर्म-का-धर्म चावल के पसाब के बुदबुदे में डूब जाता है। यद्यपि पोथीनिष्ठ जाति-भेद की मृत्यु सहभोज में निहित है, पर सावरकर ने इस बन्धन को तोड़ने के लिए निम्न शर्तों का वर्णन किया है:

(1) यदि हम सहभोज के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो प्रत्यक्ष रूप से सहभोज में भाग लेने से कतराना नहीं चाहिए।

(2) इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि सहभोज में कोई विशिष्ट व्यक्ति या विशिष्ट जाति के लोग अवश्य उपस्थित हो।

(3) नित्यप्रति अवसर पाने पर सहभोज करना चाहिए।

(4) प्रत्यक्ष सहभोज प्रकट रूप से सार्वजनिक स्थानों पर होने चाहिए।

(5) प्रत्येक सहभोज में यथासम्भव अस्पृश्य अवश्य शामिल हो।

सवरकर के शब्दों में "कितना सरल हैं यह साधन? ब्राह्मण तथा बसोड़ एक हीं पंगत में अभिन्नता से बैठ जायें और मोतीचूर के लड्डुओं को डटकर खायें और देखें, तो क्या दिखयी देगा, जाति-भेद तो नष्ट हीं हो गया है।[4]

(4) बेटी-बन्धनः-

बेटी-बन्धन को तोड़ने हेतु साहस की आवश्यकता है। सावरकर ने इस सम्बन्ध में फैलाये गये भ्रामक प्रचार के विरूद्ध सचेत किया। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि "किसी एक व्यक्ति या वर्ग की कन्याएं किसी दूसरी व्यक्ति का वर्ग में व्याहनी ही होगी। इसका वास्तविक अर्थ है "यदि कोई हिन्दु दयालुता, सुप्रजन क्षमता आदि वैवाहिक गुणों से युक्त किसी अन्य जातिके हिन्दू वर-वधू को पसन्द कर ले तो केवल इसीलिए कि उनकी जाति भिन्न है, उस विवाह को निषिद्ध न माना जाये या उस कारण से उन वधू-वरों को पूर्णतः सव्यवहार्य मानने में आपत्ति न हो, एसी एक अनुज्ञा है। इस प्रकार के विवाह "हिन्दू राष्ट के संगठन के लिए उपकारकव अपरिहार्य।[5]

जाति-भेद का उन्मूलन करने हेतू सावरकर ने तीन और वनों की चर्चा की है।

(5) वेदोक्त-बन्धनः-

हिन्दू मात्र को समस्त धर्मग्रन्थों के अध्ययन का समान अधिकार होना चाहिए। इसी प्रकार वेदोक्त संस्कार का समस्त हिन्दूओं को समान अधिकार मिलना चाहिए।

किसी उपजाति को इससे वंचित रखना हिन्दू समुदाय के लिए अहितकर होगा।

(6) सिन्धु बन्धन:-

विदेश गमन के आधार पर जाति बहिष्कार अहितकर है। इस दुष्प्रवृत्ति के कारण अनेक जातियोंमे विदेश गमन निषिद्ध कर दिया। ऐसा होते ही विदेश व्यापार, विदेशो से सम्बन्ध और व्यवहार आदि समस्त कार्य-कलाप समाप्त हो जायेंगे। ''इतना हीं नहीं, बृहत्तर भारत के वे द्वीप, जिन्हें हमारे पूर्णजों ने बसाया या हमारे व्यापारियों सेनानियों ने जिन्हें जीता और बसाया, ऐसे नगर, बन्दरगाह और राज्य इस शुद्ध-शुद्ध के पागलपन जैसे रोग से हमारी मातृभूमि से एकाएक अलग हो गये।[6]

(7) शुद्धि-बन्धन;-

जाति-बन्धन को तोड़ने हेतु सावरकर का सन्देश था ''जाति और व्यवहारी, वर्ग अथवा वर्णों के जो बन्धन आज के युग में अपनी उपादेयता खो चुके हैं, मिटा दो। हमें चाहिए कि हम हिन्दू रक्त की पुनीत धारा को अटक से कटक तक समस्त हिन्दू जाति की नस-नस में प्रभावित होने दें, जिससे कि यह जाति अखण्ड, अभेद राष्ट और इस्पात की भाँति सदृढ़ हो सकें।[7]

निष्कर्ष:-

भारत की सांस्कृतिक पुनरूत्थान में अनेकों संस्था एक व्यक्ति का योगदान रहा हैं जिसमे वीर सावरकर जी का योगदान, महत्वपूर्ण हैं, उन्होंने समाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में सामाजिक विशोषाधिकारों को समाप्त किया। वे जाति और धर्म से सबको समान अधिकारों के पक्षधर थे। उनका कहना था कि भारतीय जनता की राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति और राष्ट्रीय एकता के लिए सामाजिक संबंधों और संस्थाओं के ऊपर गुणात्मक, योग्यताधारित और जनतंत्रीकरण होना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. विनायक दामोदर सावरकर, हिंदुत्व के पांच प्राण, पृ. 91 से 105 तक।
2. विनायक दामोदर सावरकर, हिंदुत्व राष्ट्र धर्म, पृ. 227
3. विनायक दामोदर सावरकर, हिन्दुत्व के पांच प्राण, पृ. 45, 46, 47, 115
4. अशोक कौशिक, युगपुरूष वीर सावरकर, पृ. 236
5. विनायक दामोदर सावरकर, हिन्दुत्व के पांच प्राण, पृ. 118, 119, से 124 तक
6. विनायक दामोदर, विचार दर्शन, पृ. 110
7. विनायक दामोदर सावरकर, हिंदुत्व, पृ. 138, 139